Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
June 2024 5(6), 1826–1829

HISTORICAL STUDY OF INDIAN CULTURE OF THE GUPTA PERIOD

गुप्तकालीन भारतीय संस्कृति का ऐतिहासिक अध्ययन

Poonam Pathak [1], Shagufta Parveen [2]

[1] Research Student, Arts Department, Mangalayatan University, Aligarh, India
[2] Supervisor, Arts Department, Mangalayatan University, Aligarh, India

ABSTRACT

English: The Gupta period is like a star in the history of Indian culture. In this era, Indian civilization and culture had reached the pinnacle of its development. Be it society, politics, literature, art or religion, extraordinary progress was made in all the fields during the Gupta period. Historians call the Gupta period, in which the movement of renaissance reached the pinnacle of development by achieving many successful achievements in the field of literature and art, the golden age of Hindu religion and the period of Hindu renaissance. The founder of this dynasty was Chandragupta I, after him his son Samudragupta extended the boundaries of the empire far and wide through his glorious victories. After this, the most important ruler of the Gupta era, Chandragupta Vikramaditya ascended the throne, who on one hand expanded the empire through his extraordinary strength, valour and leadership skills, and on the other hand gained popularity among the people through efficient administration and religious tolerance. Skandagupta was the last glorious king of this golden age, whose glory shone on the whole of northern India. These rulers patronised art and literature during their rule and took all social, economic and administrative fields to the pinnacle of progress.

Hindi: भारतीय संस्कृति के इतिहास में गुप्तकाल एक नक्षत्र की भांति है। इस युग में भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। क्या समाज, क्या राजनीति, क्या साहित्य, वया कला और क्या धर्म-सभी क्षेत्रों में गुप्त युग में असाधारण प्रगति हुई। इतिहासवेत्ता गुप्त-काल को, जिसमें नवाभ्युत्थान का आन्दोलन साहित्य व कला के क्षेत्र में अनेक सफल सिद्धियों को प्राप्त करता हुआ विकास की चश्में पराकाष्ठा तक पहुंच गया था, हिन्दू धर्म का स्वर्ण-युग और हिन्दू नवाभ्युत्थान का काल कहते हैं। इस वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम था उसके उपरान्त उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने अपनी गौरवपूर्ण विजयों द्वारा साम्राज्य की सीमाओं को बहुत दूर-दूर तक बढ़ाया। इसके तत्पश्चात् गुप्त-युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य सिहासनासीन हुआ, जिसने एक ओर अपने असाधारण बल, विक्रम और नेतृत्व शक्ति के द्वारा साम्राज्य का विस्तार किया, तो दूसरी ओर कुशल प्रशासन और धार्मिक सहिष्णुता के द्वारा जनता में लोकप्रियता प्राप्त की। स्कन्दगुप्त इस स्वर्ण-युग का अन्तिम प्रतापी नरेश था, जिसके प्रताप का सूर्य समस्त उत्तरी भारत पर चमकता रहा। इन शासकों ने अपने शासन-काल में कला और साहित्य को संरक्षण प्रदान किया था और सामाजिक, आर्थिक, प्रशासकीय सभी क्षेत्रों को उन्नति के चरम शिखर पर पहुचाया था।

Keywords: Society, Indian Civilization, Literature, Caste System, समाज, भारतीय सभ्यता, साहित्य, वर्ण व्यवस्था

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i6.2024.5037

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

1. प्रस्तावना

गुप्त-युगीन सामाजिक दशा का परिज्ञान हमें चीनी यात्री फाह्यिान के विवरणों तथा तत्कालीन साहित्य कृतियों से प्राप्त होता है। फाह्यिान ने सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन काल में भारत-भ्रमण किया था। बौद्ध धर्म के प्रामाणिक ग्रन्थों की खोज में यह भारत आया था। उसने अपने यात्रा-विवरण में कुछ ऐसे प्रसंग भी लिखे है जिनसे हमें तत्कालीन सामाजिक स्थिति का बोध होता है। वर्ण व्यवस्था भारतीयों के सामाजिक जीवन की एक सर्वप्रमुख विशेषता है। वैदिक-युगीन समाज में जिस वर्ण-व्यवस्था की नीव पड़ी थी, उसे जैन और बौद्ध धर्मो के उदय काल में पर्याप्त आघात भी सहन करने पड़े थे। परन्तु उसकी नींव हिन्दू जन-जीवन में इतनी गहरी जमी हुई थी कि आघातों के उपरान्त भी उसका अस्तित्व समाप्त न हुआ। यही नहीं,

हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के साथ ही उसका पुनरूस्थान भी प्रारम्भ हुआ। हिन्दू धर्मावलम्बी गुप्त-शासकों के समय में समाज के विभाजन का आधार यही वर्ण-व्यवस्था थी। चारों वर्णों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ब्राह्मण होते थे।1 उनके छः कर्तव्य थे पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना एवं दान लेना। यह वर्ण राजनीति की ओर से उदासीन न रहकर, राजनीतिक उठा पटक में सदा सक्रिय रहता था। राजा का पुरोहित ब्राह्मण होता था और यह पुरोहित राजा के धार्मिक विषयों में परामर्श देने के साथ-साथ विविध देवी देवताओं की स्तुति करके राष्ट्र के मंगल की कामना करता था। युद्ध-क्षेत्र में भी वह राजा के साथ रहता था। इस प्रकार ब्राह्मणों को गुप्त युगीन समाज में सबसे अधिक आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। गुप्त-काल के समाज में दूसरा स्थान क्षत्रियों का था। देश का रक्षक होने के साथ उन्हें ब्राह्मणों के छः कार्यों में से तीन-पढ़ना, दान देना, यज्ञ करना, स्वीकृत थे परन्तु शेष तीन कार्यों को करने का अधिकार इन्हें नहीं था। तीसरा वर्ष वैश्यों का था जिनका प्रधान कर्म व्यापार करना था। यह लोग प्रायः धनी होते थे और सदावर्त क्षेत्र तया औषधालय आदि खुलवाते। वैश्यों का समाज में अधिक ऊँचा स्थान न था। मनु तथा वशिष्ठ ने अतिथि वैश्य को नौकरों के साथ भोजन कराने का विधान किया है। अन्तिम वर्ण में शूद्र आते थे और उनका कार्य उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करना था। चाण्डाल नामक एक अन्य जाति भी उस समय थी तथा इसका स्थान चारो वर्णो से नीचा था चाण्डालो के विषय में फाह्यिान लिखता है कि ‘वे नगर के बाहर रहते है और नगर में जब आते हैं, तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं कि लोग जान जायें और बचकर चलें; कहीं उनसे छू न जायें।‘‘ मछली मारने, शिकार करने और माँस बेचने के कार्य को केवल यही लोग किया करते थे। ये श्मशानों की रखवाली करते और कफन आदि लेते थे। समाज में इनका स्थान बहुत नीचा था।2

इसी प्रकार यह स्पष्ट है कि गुप्तकालीन सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार वर्ण-व्यवस्था थी। किन्तु वर्ण-व्यवस्था के बन्धन इस युग में जटिल नहीं हुए थे। हमारे पास ऐसे दृष्टान्तों की कमी नहीं है जिसमें एक वर्ण में जन्म लेने वाले व्यक्ति ने दूसरे वर्ण के कार्य को अपनाया था। फाहियान ने अनेक ब्राह्मण राजाओं का वर्णन किया है। आपत्तिकाल में ब्राह्मण ने वैश्य-वृत्ति के द्वारा अपनी जीविका चलाई इसका भी उल्लेख प्राप्त होता है। नाटककार शूद्रक के ‘मृच्छकटिकमृ‘ नाटक में स्पष्ट लिखा है कि चारुदत्त ब्राह्मण होते हुए भी वणिक् का कार्य करता था। यही नहीं, अन्य वर्णों के व्यक्तियों के भी दूसरे वर्णों के समान जीविका-यापन करने के उदाहरण मिलते हैं। कहीं-कहीं शूद्र राजानों के भी उल्लेख मिलते हैं। गुप्त-युग में अन्तर्जातीय विवाह भी बहुत होते थे। उच्च-वर्ण के पुरुष का निम्न-वर्ण की स्त्री से विवाह कर लेना प्रतिलोम-विवाह कहलाता है और उच्च-वर्ण की स्त्री का निम्न वर्ण के पुरुष से विवाह कर लेना अनुलोम-विवाह कहलाता है।3 गुप्त-युगीन समाज में उक्त दोनों प्रकार के विवाह प्रचलित थे। शूद्रक के मृच्छकटिक में ब्राह्मण चारुदत्त का बसन्तसेना नामक वेश्या से सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार वाकाटक नरेश रुद्रसेन जो कि ब्राह्मण था, उसने गुप्त-वंश की राजकुमारी प्रभावती से विवाह किया था। कदम्ब शासकों ने ब्राह्मण होते हुए भी अपनी पुत्रियों का विवाह गुप्त-वंश में किया था। इस प्रकार अनुलोम और प्रतिलोम दोनों ही प्रकार के विवाह उस समय प्रचलित थे। गुप्त काल में दास-प्रथा प्रचलित थी। यह प्रथा भारतीय समाज में गुप्तों के पूर्व से ही चली जा रही थी। मनु ने सात प्रकार के दासों का उल्लेख किया है- (1) युद्ध में जीता गया, (2) आत्मदान द्वारा बना दास, (3) दासी का पुत्र, (4) खरीदा गया, (5) दूसरे स्वामी का दिया हुआ, (6) दास का वंशज, तथा (7) दण्ड रूप में जिसे दास बनाया गया है। समाज में दासों के साथ दुव्र्यवहार नहीं किया जाता था। उन्हें भी घर का एक अंग समझा जाता था और उनका समुचित ध्यान रखा जाता था। यदि कोई दास अपने स्वामी के प्रतिबन्ध को पूर्ण कर देता था तो उसे आजाद कर दिया जाता था। संकट के समय यदि दास स्वामी के प्राणों की रक्षा करता था तो भी उसे दासता से मुक्ति दे दी जाती थी। गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों को दशा गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों की दशा वैदिक-युग की भाँति उच्च एवं प्रतिष्ठा पूर्ण तो न रही थी, फिर भी उन्हें समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। स्त्री-पुरुष की अर्धांगिनी समझी जाती थी और प्रत्येक धार्मिक कृत्य में पति के साथ उसकी उपस्थिति भी अनिवार्य रहती थी। कालिदास ने, लिखा है कि सीता का त्याग करने के बाद राम को यज्ञ के लिए सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनवानी पड़ी थी। वात्स्यायन ने अपने ‘‘कामसूत्र‘‘ में स्त्रियों के कर्तव्य बताये हैं। गृहस्थी के कार्याें को सुचारु रूप से सम्पादित करना, पति के आगमन पर सुन्दर वेष धारण करके उसका स्वागत करना तथा पति की आज्ञानुसार सामाजिक उत्सवों में भाग लेना इनके अन्तर्गत हैं। गुप्त-काल में स्त्री-शिक्षा का भी प्रचलन दिखाई देता है। यद्यपि स्मृतियों ने स्त्रियों को शिक्षा देने के पक्ष में निर्णय नहीं दिया था। फिर भी समाज में प्रायः स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होती थीं। ‘अमरकोष‘ में वैदिक मन्त्रों की शिक्षा प्रदान करने वाली स्त्रियों का वर्णन आया है। आश्रम में रहने वाली स्त्रियाँ विभिन्न विषयों का अध्ययन करती थीं। शोलभट्टारिका एक विद्वान तथा योग्य महिला थी। ‘मृच्छकटिकमृ‘ में पढ़ी-लिखी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती एक यथेष्ट शिक्षित महिला ज्ञात होती है। स्त्रियों द्वारा पति के पास पत्र भेजने के वर्णन मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि सामान्य स्त्रियाँ भी शिक्षित हुआ करती थीं। कालिदास ने भी शकुन्तला के द्वारा प्रेम-पत्र के लिखने का उल्लेख किया है।

गुप्तकालीन भारतीय समाज में पर्दे की प्रथा नहीं थी। उस समय के चित्रों को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। तत्कालीन साहित्यिक वर्णनों से पर्दा प्रथा के अभाव की पुष्टि होती है। स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी में बन्द न रहकर बाहर निकलती थीं। साधारण स्त्रियाँ सार्वजनिक कार्यों में भाग लिया करती थीं। कालिदास ने ‘रघुवंश‘ में समस्त राजाओं के सामने पति का वरण करने के लिए इन्दुमती के आने का उल्लेख किया है। इन सब बातों से प्रकट है कि उस युग में पर्दे का प्रचलन नहीं था। जहाँ तक विवाह की पद्धतियों का प्रश्न है, गुप्तकालीन समाज में ब्राह्म, देव आर्ष एवं प्राजापत्य-प्रणालियाँ उत्तम समझी जाती थीं तथा आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच निम्न कोटि की मानी जाती थीं। वैसे विवाह के ये आठों प्रकार उस समय प्रचलित थे। कालिदास ने दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के गान्धर्व विवाह का वर्णन किया है। वात्स्यायन ने भी इस प्रकार के विवाह का समर्थन किया है। इस समय स्वयंवर की प्रथा भी विद्यमान थी। कालिदास द्वारा वर्णित इन्दुमती के स्वयंवर का प्रसंग अत्यन्त रोचक व रमणीय है। विवाह के समय संभवतः दहेज नहीं दिया जाता था, क्योंकि हमें कहीं भी इसका वर्णन नहीं मिलता है। बाल-विवाह की प्रथा भी गुप्त-काल में नहीं दिखाई पड़ती है। पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से भी विवाह कर लेते थे। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने कुबेरनामा और ध्रुवदेवी के साथ विवाह किये थे।4

गुप्त काल में विधवा-विवाह का प्रचलन था, परन्तु अनेक स्थानों पर उसके विरोध में भी वर्णन मिलते हैं। जो भी हो, हमें विधवा-विवाह के अनेक प्रसंग उस समय के सामाजिक जीवन में प्राप्त होते हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने भाई रामगुप्त की मृत्यु के बाद उसकी विधवा स्त्री ध्रुवदेवी के साथ विवाह किया था। 'नारद' तथा 'पाराशर' स्मृतियाँ भी विधवा विवाह को उचित बताती है। परन्तु अन्य स्मृतियाँ इसके पूर्ण विरोध में हैं। वृहस्पति के अनुसार विधवा स्त्री को अपने पति के साथ जल जाना चाहिए। इस वर्णन से प्रकट है कि सती प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। एरण के एक लेख में भानुगुप्त के सेनापति गोपराज को मृत्यु के बाद उसकी स्त्री के सती होने का उल्लेख मिलता है। गुप्तकालीन समाज में गणिकाएँ भी विद्यमान थी। ये सार्वजनिक स्त्रियाँ होती थीं। ये स्त्रियाँ नृत्य और गायन आदि कलाओं में पारंगत होती थी तथा कामशास्त्र में भी निपुण हुआ करती थीं। समाज में इन्हें ऊँची दृष्टि से नहीं देखा जाता था। जिस गन्धर्वशाला में गणिकाओं की कन्याएँ शिक्षा ग्रहण करती थी उनमें नागरिकगण अपनी लड़कियों को नहीं भेजते थे। परन्तु शूद्रक ने अपने 'मृच्छकटिकम्' में गणिका को विशेष स्थान दिया है। उसमें उसने आर्य चारुदत्त जैसे श्रेष्ठ पुरुष को भी गणिका बसन्तसेना के प्रति अच्छे विचार रखते हुए दिखाया है।

गुप्त कालीन समाज में वस्त्र तथा आभूषण गुुप्तयुगीन साहित्यिक विवरणों एवं प्राप्त कलाकृतियों से उस युग के समाज के वस्त्रों एवं आभूषणों के सम्बन्ध में यथेष्ट परिचय मिलता है। पुरुष उत्तरीय तथा अधोवस्त्र (घोती) का व्यवहार करते थे। अपने सिर पर उष्णीष (पगड़ी) भी धारण करते थे। साधारण मनुष्यों के सिर पर तो उष्णीष रहती थी, परन्तु राजा लोग अपने सिर पर मुकुट धारण करते थे। स्त्रियों का परिधान साड़ी था। साड़ी के नीचे वे पेटीकोट भी पहनती थीं। सीथियन स्त्रियाँ ब्लाउज पहनती थीं। भारतीय स्त्रियाँ मुख्य रूप से चोली पहनती थीं। अजन्ता एवं बाघ गुफाओं के चित्रों में स्त्रियों को चोली पहने हुए दिखाया गया है। अजन्ता के चित्रों में एक स्त्री छींट की अंगिया पहने दिखाई गई है, इससे स्त्रियों द्वारा छींठ के प्रयोग का पता चलता है।5

फाहियान के वर्णनों से ज्ञात होता है कि गुप्तयुगीन समाज में प्रधानतः ऊनी और रेशमी वस्त्रों का व्यवहार होता था। रेशम का कपड़ा चीन से आता था और उसे 'चीनांशुक' कहते थे। कालिदास ने अपने नाटकों में इसका उल्लेख किया है। मन्दसौर के अभिलेखों में भी रेशम के वस्त्रों की लोकप्रियता का वर्णन मिलता है। गुप्त-काल में स्त्री-पुरुष दोनों ही आभूषणों के प्रेमी थे। इस विषय में श्री रतिभानुसिंह नाहर ने लिखा है, ''स्त्रियों के आभूषण विविध प्रकार के तथा नेत्रों को भले लगने वाले होते थे। सोने तथा मोतियों के हारों का सौन्दर्य अद्भुत होता था। मृच्छकटिकम् में चारूरत की स्त्री बसन्तसेना के लिए मोतियों के जो हार भेजती है उनके वर्णन से पता चलता है कि इय समय के स्वर्णकार निपुण और कलात्मक अभिरूचि सम्पन्न होते थे। कम से कम छः प्रकार की करधनियों (मखला) का उल्लेख मिलना है। कड़ों, अंगूठिया और केयूरो (बाजूबंदो) का प्रयोग बहुलता से किया जाता था।6 पैरों में काफी सख्या में कड़े पहन जाते थे।'' वात्स्यायन ने स्त्रियों के लिए आभूषण पहनना अत्यन्त आवश्यक बताया है और लिखा है कि स्त्री सदैव सुन्दर वरत्राभूषणों से अलंकृत होकर पति के समक्ष जाया करे। केवल स्त्रियों ही नहीं। पूरुष भी अंगूठी, कुण्डल और हार आदि आभूषणों को धारण करते थे। कालिदास ने इन्दुमती के स्वयंवर में आने वाले राजाओं को आभूषणों से सज्जित दिखाया है। श्री लूनिया ने लिखा है, ''गुप्त-युग में सुन्दरतापूर्वक बनाई हुई आकर्षक कानों की बालियाँ, विविध प्रकार के मोतियों की मालाएँ, लगभग एक दर्जन प्रकार की मेखलाऐं (कंदोरे), वक्षस्थल और जंघाओं के मोतियों के जालीदार आभूषण और रत्नजटित चूडियाँ व्यवहार में थीं। अंगूठियों का प्रयोग अधिक था परन्तु नथ सर्वथा अज्ञात थी। अजन्ता के भित्तिचित्र यह प्रकट करते हैं कि केश संवारने की कलाएँ उतनी ही आकर्षक, सुन्दर और विविध थीं, जितने कि केश। मुख और ओठों की सौंदर्य वृद्धि के लिए रंग तथा लेप अज्ञात नहीं थे। गुप्त-काल में स्त्रियां अपनी केश-सज्जा के प्रति उदासीन न थीं। वे सुगन्धित द्रव्यों को जलाकर उनकी उष्णता से अपने गीले केशों को सुखाती और सुगन्धित करती थीं। कालिदास ने इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। उन्होंने अपने 'मेघदूत' में स्त्रियों को मन्दार के फूलों से अपने केशों को सजाते हुए भी वर्णित किया है। उस समय की मूर्तियों तथा चित्रों में केश विन्यास को विविध पद्धतियाँ दिखाई देती हैं।7

निष्कर्ष गुप्तयुगीन खान-पान के विषय में चीनी यात्री फाहियान लिखता है, ''बाजार में मांस और मदिरा की दुकानें नहीं हैं। लोग सुअर तथा मुर्गियाँ नहीं पालते, प्याज तथा लहसुन तक नहीं खाते, शराब नहीं पीते, केवल चाण्डाल जो समाज से बहिष्कृत है, शिकार खेलते हैं और माँस का विक्रय करते हैं।'' परन्तु फाहियान के इस वर्णन को इतिहासकारों ने स्वीकार नहीं किया है क्योंकि तत्कालीन साहित्य में स्थान-स्थान पर माँस एवं मदिरा के प्रयोग का उल्लेख आया है। कालिदास द्वारा रचित 'शकुन्तला नाटक' में माढव्य को सूअर का मांस खाते दिखाया गया है। 'रघुवंश' में एक स्थान पर सहभोज के अवसर पर मदिरा परोसने का उल्लेख आया है। अतः फाहियान के विवरण को हम केवल बौद्ध और जैनों के लिए लिखा हुआ तो मान सकते हैं परन्तु समस्त नागरिकों के लिए स्वीकार नही कर सकते। उस समय के नागरिकों का साधारण भोजन दाल, चावल, रोटी, बाजरा, मिठाई, घी और शक्कर था। शूद्रक ने 'मृच्छकटिकमृ' मे चावल पकाये जाने का वर्णन किया है। भोजन दिन में दो बार पूर्वान्ह और अपरान्ह में किया जाता था। ग्रहस्थ एवं राम्राट् साधुओं को श्रद्धापूर्वक अपने घर में भोजन भी कराते थे। फह्यिान लिखता है कि ''भिक्षुसंघ को शिक्षा देते समय राजा लोग अपना मुकुट उतार लेते है। अपने बन्धुओं और अमात्यों सहित अपने हाथ में भोजन परोसते थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय के गढ़वा के लेख में एक ब्राहाण को भोजन के लिए दस दीनार दिये जाने का वर्णन मिलता है। इससे प्रकट है कि उस समय खाद्य-सामग्री अत्यन्त सस्ती थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

के0 सी0 श्रीवस्तव भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, पृ० 197
मनुस्मृति ग्ण्99 और 100
लुडर्स लिस्ट, सं0 53, 54, 68, 87, 95, तुलनीय (इंडियन कल्चर, कलकत्ता, ग्प्प्द्ध पृ0 83-85
वही, सं0 32, 53-4, 345, 857, 1005, 1092, 1129

धर्मकोश 1, भाग 111, पृ0 1927
महाभाष्य, पृ019
महावस्तु, पृ0 463-78